सावरकर के जीवन की 'असली' उपलब्धियों की अनदेखी करने का पाप नहीं करना चाहिए

आशुतोष कुमार

सावरकर की उपलब्धि थी भारत में सांप्रदायिक राजनीति और हिंदू राष्ट्रवाद के मजबूत सिद्धांत का निर्माण करना। उस सिद्धांत को जमीन पर उतारने की व्यवहारिक रणनीति का निर्माण करना।

इस राह में सबसे बड़े रोड़ा थे महात्मा गांधी। उन्हें भी रास्ते से हटाना पड़ा। गांधी जी की हत्या की परियोजना में सावरकर की भूमिका अब कोई छुपी हुई बात नहीं है। न उस पर कोई संशय है।

इसिलये सावरकर की उपलब्धियां गिनाते हुए इनकी चर्चा न करना उनके साथ अन्याय करना है।

.....हिन्दू महासभा और संघ ने देखा कि गोडसे की बारूदी गोली गाँधीजी के असर को खत्म नहीं कर पाई। विभाजन के बावजूद हिन्दूराष्ट्रवाद की राजनीति सिरे नहीं चढ़ पाई। लेकिन अभी एक उनके पास एक बंदूक और थी। झूठ की बंदूक। दोनों बंदूकें पहले से तैयार थीं।

गाँधी जी के खुले सीने पर तीन गोलियां और अदालत में गोडसे का झूठ से भरा लंबा भावुक भाषण - दोनों एक ही षडयंत्र के दो हिस्से थे। वही भाषण बाद में गाँधी वध और मैं नामक किताब, 'मी नाथूराम गोडसे बोलतोय' जैसे नाटक और अभी प्रचारित की जा रही 'मैंने गाँधी को क्यों मारा' नामक फिल्म के जरिए बार बार दुहराया जाता है।

गाँधी जी की हत्या का काम अभी तक पूरा नहीं हो पाया है। लेकिन उनके हत्यारे भी कम नहीं है। कोशिशें मुसलसल जारी हैं। हिम्मत भी पहले से बड़ी-चड़ी है।

हर बड़ी कहानी की तरह इस झूठ कथा के भी तीन हिस्से हैं। आरंभ, उत्कर्ष और चरमोत्कर्ष।

आरंभिक हिस्से में लिखा है-गोडसे एक पागल हत्यारा था। वह सोची समझी किसी बड़ी साजिश का हिस्सा नहीं था। इस आरंभ से यह स्थापित करने की गुंजाइश पैदा होती है कि तरीका भले ही गलत रहा हो, भावना पवित्र थी।

दूसरे हिस्से में लिखा है कि गोडसे का हिंदू महासभा से कोई संबंध रहा भी हो, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से उसका कोई लेना देना नहीं था। इससे जनता के बचे-खुचे आक्रोश को महासभा की तरफ मोड़ कर संघ को बचा लिया जाता है। यों हिंदूराष्ट्रवाद की राजनीति को एक दूसरे ब्रांड के सहारे जीवित रखने और आगे बढ़ाने की सहूलियत मिल जाती है।

इस झूठ कथा का चरमोत्कर्ष है, भारत के विभाजन के लिए महात्मा गांधी को जिम्मेदार ठहराना । यहां पहुंचकर गांधी जी की हत्या एक पवित्र और अपरिहार्य राष्ट्रीय कर्तव्य का रूप ले लेती है।

कपूर कमीशन ने इन सभी झूठों की बखिया उधेड़ दी थी। इधर कुछ और भी किताबें आई हैं, जिन्होंने संदेह की रही-सही गुंजाइश भी खत्म कर दी है।

चित्र में दिखाई दे रही तीन किताबों में से एक दो युवा पत्रकारों, सुरेश और प्रियंका, ने लिखी है। इस किताब में गांधी जी की हत्या की समूची जांच-प्रक्रिया और सम्बंधित मुकदमे की गहन पड़ताल करते हुए हत्या के पीछे की विराट साजिश को उजागर कर दिया गया है।

इस साजिश में मुख्य किरदार सावरकर, उनकी हिंदू महासभा तथा उसे पालने-पोसने वाले देसी रजवाड़ों का है।

किताब में गांधी जी की हत्या की जांच और उस मुकदमे को लेकर भी कुछ बेचैन करने वाले सवाल उठाए हैं। मसलन यह कि जब मोरारजी देसाई ने कुछ दिन पहले ही भारत के तत्कालीन गृहमंत्री को गांधी जी की हत्या की साजिश और उसके कर्णधार के बारे में स्पष्ट सूचना दे दी थी, तब भी उसे नाकाम क्यों नहीं किया जा सका। और तमाम सबूतों के होते हुए भी साजिश के सूत्रधार के रूप में सावरकर की पहचान क्यों नहीं की जा सकी।

दूसरी किताब इतिहासकार धीरेंद्र झा ने लिखी है। इस किताब में हिंदू महासभा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अंतरंग संबंधों की शोधपूर्ण पड़ताल की गई है। इससे यह भ्रम मिट जाता है कि दोनों एक दूसरे से अलग दो स्वतंत्र राजनीतिक एजेंसियां थी।

.....रही बात विभाजन की तो उस विषय पर अनगिनत शोधपरक किताबें मौजूद हैं। इनका सावधानी से अध्ययन करने पर विभाजन के असली गुनहगारों की पहचान आसानी से की जा सकती है । आलोचना पत्रिका के विभाजन अंकों को भी देखा जा सकता है।

42 के भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान जब कांग्रेस के नेतृत्व में सभी बड़े नेता या तो जेल में थे या भूमिगत थे, तब सिंध में सरकार चलाने की जिम्मेदारी मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा ने मिल कर उठाई थी। उन दिनों सावरकर महासभा के अध्यक्ष थे।

महासभा और लीग की सरकार के रहते ही सिंध विधानसभा ने पाकिस्तान के समर्थन में प्रस्ताव पास किया था। महासभा के सदस्यों ने इस प्रस्ताव के खिलाफ वोट तो किया, लेकिन इसके बाद भी लीग के साथ मिलकर सरकार चलाते रहे!

उधर बंगाल में महासभा नेता श्यामाप्रसाद मुखर्जी नीत लीग सरकार में शामिल हुए!

द्विराष्ट्रवाद का सिद्धांत सावरकर मुस्लिम लीग से बहुत पहले प्रतिपादित कर चुके थे। आज तक हिन्दुत्ववादी उसी लाइन पर चल रहे हैं।

जिन्ना ने सन 1940 में मुस्लिम लीग के लाहौर अधिवेशन में टू नेशन थियरी की जमकर वकालत की. उनका कहना था कि हिंदू मुसलमान हर मानी में एक दूसरे से अलग हैं। इतिहास, स्मृति, संस्कृति, सामाजिक सन्गठन , जीवन उद्देश्य - सब कुछ दोनों के अलग हैं.

इसलिए वे केवल दो धर्म नहीं, दो राष्ट्र हैं, जो एक साथ रह ही नहीं सकते। अगर जबरन उन्हें साथ रखा गया तो यह दोनों के लिए विनाशकारी होगा। पता नहीं, कांग्रेस के नेता इस सचाई का सामना क्यों नहीं करना चाहते !

इसके कुछ पहले, सन 1937 में , हिंदू महासभा के अहमदाबाद अधिवेशन में, उसके नए बने अध्यक्ष सावरकर यह कह चुके थे- हम साहस के साथ वास्तविकता का सामना करें। भारत को आज एकात्म और एकरस राष्ट्र नहीं माना जा सकता,प्रत्युत यहाँ दो राष्ट्र हैं।

ये दोनों बातें जगतप्रसिद्ध हैं। लेकिन इसी सन्दर्भ में सरदार पटेल के एक अत्यंत महत्वपूर्ण वक्तव्य की कम चर्चा होती है। यह वक्तव्य अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की उस बैठक में दिया गया था, जिसमें विभाजन के प्रस्ताव को मंजूर किया गया। इस बैठक की अध्यक्षता सरदार पटेल ने की थी।

अपने भाषण के अंत में उन्होंने कहा - यह बात हमें पसंद हो या नापसंद, लेकिन पंजाब और बंगाल में वास्तव में-डि फैक्टो-पाकिस्तान मौजूद है। इस सूरत में मैं एक कानूनी-दे जूरे-पाकिस्तान-अधिक पसंद करूंगा, जो लीग को अधिक जिम्मेदार बनाएगा। आजादी आ रही है। 75 से 80 प्रतिशत भारत हमारे पास है। इसे हम अपनी मेधा से मजबूत बनाएंगे। लीग देश के बचे हुए हिस्से का विकास कर सकती है।

द्विराष्ट्रवाद का सिद्धांत सावरकर मुस्लिम लीग से बहुत पहले प्रतिपादित कर चुके थे। आज तक हिन्दुत्ववादी उसी लाइन पर चल रहे हैं।

यह देखना कम हैरतअंगेज नहीं है कि सरदार केवल पाकिस्तान के प्रस्ताव को ही नहीं, एक तरह से, उसके पीछे की टू नेशन थियरी को भी मंजूर करते लग रहे हैं। और भी हैरतअंगेज यह देखना है कि बंटवारे की बात इस तरह की जा रही है, जैसे मातृभूमि नहीं, कोई जागीर बंट रही हो। हम अपने अस्सी फीसद को सम्हालेंगे, बाकी का जो करना हो, लीग करे!

एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के कुल चार सौ सदस्य थे, जिनमें उस दिन की ऐतिहासिक मीटिंग में केवल 218 मौजूद थे। इनमें से 29 सदस्यों ने विभाजन के प्रस्ताव का विरोध किया। 30 सदस्यों ने एब्सटेन किया। और 159 ने प्रस्ताव का समर्थन किया। यानी कुल सदस्यों के केवल 40 प्रतिशत के समर्थन से देश बंट गया।

प्रस्ताव के समर्थन में महात्मा गांधी और पंडित नेहरू के वोट भी थे, जिन्हें मनाने का काम, मौलाना अबुल कलाम आजाद कहते हैं, कि सरदार पटेल ने किया था. माउंटबेटन ने भी अपने संस्मरणों में इस बात की ताईद की है कि कांग्रेस में विभाजन ने उनके प्रस्ताव के लिए सबसे पहले राजी होनेवाले नेता सरदार पटेल थे, जिन्होंने नेहरू और गाँधी को तैयार करने की जिम्मेदारी ली और उसे निभाया।

गाँधी जी ने अंतिम क्षण तक कांग्रेस को विभाजन के प्रस्ताव से दूर ले जाने की कोशिश की। उन्होंने इस बात पर अपनी निराशा सार्वजनिक रूप से जाहिर की थी कि खुद को गाँधी जी का अनुशासित सिपाही बताने वाले पटेल अब उनकी कोई बात सुनने को तैयार नहीं थे! गाँधी ने देख लिया था कि माउंटबेटन, लीग और कांग्रेस को विभाजन के फैसले से अलग करना मुमकिन नहीं रह गया है।

कांग्रेस कमेटी में नेतृत्व के निर्णय के खिलाफ वोट डालकर उस नाजुक मोड़ पर उसे गहरे राजनीतिक संकट में डालने की जगह उन्होंने हमेशा की तरह जनता के पास लौटने का फैसला किया!

सिर्फ इस एक वोट के आधार पर गांधीजी को विभाजन का जिम्मेदार मान लिया जाता है। लेकिन उन सरदार पटेल पर उंगली नहीं उठाई जाती, जिन्होंने न केवल इस बैठक की अध्यक्षता की थी बल्कि विभाजन के प्रस्ताव के पारित होने पर प्रसन्नता भी जाहिर की थी।

सन 42 के भारत छोड़ो आंदोलन के समय का गांधी जी का ऐतिहासिक भाषण अगर आप पढ़े तो साफ हो जाएगा कि आंदोलन केवल अंग्रेजों के खिलाफ नहीं था। उतना ही जिन्ना की मुस्लिम लीग और सावरकर की हिंदू महासभा की विभाजनकारी राजनीति के खिलाफ भी था।

जिस समय गांधी जी विभाजन पर आमदा इन तीन बड़ी शक्तियों से लोहा ले रहे थे, उस समय यह तीनों ही यानी कि हिंदू महासभा, मुस्लिम लीग और अंग्रेज सरकार एक दूसरे का हाथ थामे देश को विभाजन की ओर ले जाने के काम में जुटे हुए थे! ऊपर-ऊपर महासभा और संघ अखंड भारत की बात करते थे, लेकिन लीग के साथ मिलकर सरकार चलाते थे। जमीन पर हिन्दू मुस्लिम तनाव बढाते हुए देश को विभाजन की ओर ढकेलने में एक दूसरे के साथ दोस्ताना प्रतियोगिता करते थे।

हिंदू महासभा और गोडसे ने सन 44 में गांधीजी की जान लेने की कोशिश तब भी की थी, जब गांधी जी राजा जी प्रस्ताव के साथ विभाजन टालने की अपनी आखिरी कोशिश करने जिन्ना से मिलने जाने वाले थे।

सन 1948 की जनवरी में गांधीजी की जान तब ली गई जब वे पाकिस्तान से भारत आए हिंदू शरणार्थियों का कारवां लेकर पाकिस्तान जाने की घोषणा कर चुके थे और वहां जा चुके मुसलमान शरणार्थियों का कारवा लेकर वापस भारत आने की भी।

जनता के भरोसे विभाजन को निरस्त करने का यह गांधी जी का अपना तरीका था। जैसी सफलता गांधी जी को नोआखली में मिली थी वैसी ही इस अभियान में भी मिलनी तय थी। इस बात की पूरी संभावना थी कि अपने घरों को वापस लौटे लोग जल्दी ही विभाजन के भयानक राजनीतिक फ्रॉड को समझ लेते और उसे नकार देते।

ऐसा ना होने पाए, इसे सुनिश्चित करने का पक्का तरीका एक ही था। गांधी जी की हत्या। सावरकर, उनके अनुयायी और कांग्रेस के भीतर बैठे दक्षिणपंथी टू नेशन थिअरी को मानते हुए धार्मिक अल्पसंख्यकों के लिए दूसरे दर्जे की नागरिकता की शर्त पर ही भारत की एकता को कबूल कर सकते थे!

उन्होंने विभाजन को मंजूर किया, क्योंकि एकीकृत भारत में दूसरे दर्जे की नागरिकता की कल्पना नहीं की जा सकती थी। गांधी जी की हत्या इसीलिए हुई कि जब सभी हार मान चुके थे, तब भी वे एकीकृत लोकतांत्रिक भारत की जिद पर अड़े हुए थे।

1942 का भारत छोड़ो आंदोलन और संघ के हीरो श्यामा प्रसाद मुखर्जी

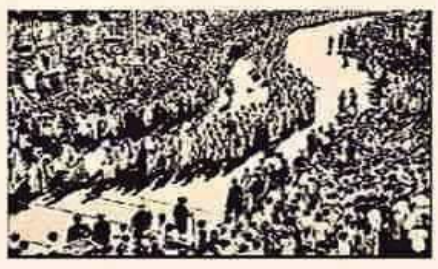

26 जुलाई 1942 को बंगाल के गवर्नर को चिट्ठी लिखकर श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने 'भारत छोड़ो आंदोलन' को हर हाल में कुचलने की सलाह दी तथा अंग्रेजी हुकूमत के प्रति अपनी वफादारी दोहराई। उस चिट्ठी का एक अंश देखिये-

"प्रश्न यह है कि बंगाल में इस (भारत छोड़ो) आंदोलन से कैसे निपटा जाए? प्रांत का प्रशासन इस तरह से चलाया जाना चाहिए कि कांग्रेस द्वारा हर संभव कोशिश करने के बाद भी, यह आंदोलन प्रांत में जड़ पकड़ने में असफल रहे। हमलोगों, विशेषकर जिम्मेदार मंत्रियों को चाहिए कि जनता को समझाएं कि कांग्रेस ने जिस स्वतंत्रता को हासिल करने के लिए आंदोलन शुरू किया है, वह स्वतंत्रता जनप्रतिनिधियों को पहले से ही हासिल है। कुछ मामलों में आपात स्थिति में यह स्वतंत्रता कुछ सीमित हो सकती है। भारतवासियों को अंग्रेजों पर भरोसा करना चाहिए..." (श्यामा प्रसाद मुखर्जी, *लीव्स फ्रॉम अ डायरी*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, पृ. 183)